Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LII (52), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

राजस्थान में परम्परागत छापा कला की अलंकरण विधा : सौंदर्यात्मक पक्ष एवं वर्तमान परिवेश में उसकी उपादेयता

राधापाल* डॉ. मनीषा चौबीसा**

* शोधार्थी, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
** शोध निर्देशक, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

मुख्य शब्द – परम्परागत परिधान, छापा कला, अलंकरण, कलात्मक एवं सौंदर्यात्मक सज्जा, भाँत।

प्रस्तावना– जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ रोटी, कपड़ा और मकान ने मानव सभ्यता के विकास में वस्त्र निर्माण कला, शारीरिक सौंदर्य तथा प्रकृति व परिवेश के साथ सामंजस्य करते हुए, परिधानों को नवीन आयाम प्रदान किया। इसी के परिणामस्वरूप वर्तमान में विभिनन रंगों, डिजाईन अलंकरण तथा स्टाईल ने वस्त्र सज्जा के द्वारा मनुष्य शरीर को सुसज्जित किया है। सौंदर्य के विभिन्न रूपों जैसे– बिंदी, सिन्दूर, रंग बिरंगे वस्त्र, अल्ता, मेहंदी या फिर आभूषणें द्वारा समय–समय पर वातावरण, परिवेश जाति, संस्कृति एवं सभ्यता के साथ धर्म को भी प्रभावित किया है। इसी प्रकार उत्सव, त्यौहार, विवाह आदि में भी भांति–भांति के डिजाईनर वस्त्रों ने उत्सव विशेष को नवीन ऊर्जा प्रदान की है। विभिन्न रंगों, डिजाईन व स्टाईल में वस्त्र सज्जा से प्रसन्नता खुशहाली, उमंग और आकर्षण से समाज में नवीनता का संचार होता रहा है। मनुष्य जीवन के खुशहाली और सभ्य समाज में जीवन्तता लाने का महत्वपूर्ण कार्य वस्त्र अलंकरण द्वारा ही होता है।

राजस्थान की परम्परागत छापा कला तथा उसका अलंकरण विधान भी सभ्यता और संस्कृति के विकास का द्योतक है। यहाँ की भूगर्भीय संरचना रीति–रिवाज और सांस्कृतिक परिवेश ने सरल जीवन को भी आकर्षक एवं महत्वपूर्ण बनाया है। वस्त्र सज्जा की कलात्मक विधियों में से परिधानों को नवीन पहचान देने वाली एक विधि छापा कला भी है। बुने हुए एवं रंगे हुए वस्त्रों को विभिन्न आकृतियाँ एवं डिजाईन बनाकर छपाई की जाती है। छपाई हेतु विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक एवं कृत्रिम तकनीकों का प्रयोग किया जाता रहा है। परम्परागत छपाई में पेड़ पौधों, पत्तों अथवा प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग किया जाता रहा है जबकि आधुनिक समय में कृत्रिम व मशीन द्वारा भी विभिन्न प्रकार की डिजाईन में वस्त्रों को तैयार किया जाने लगा है।

इस प्रकार वस्त्र की आवश्यकता मूलभूत मात्र ही नहीं रही अपितु उन्नति की पहचान भी बन गई है। परम्परागत तकनीक एवं डिजाईन को आधुनिक फैशन में समाहित करके वस्त्र सज्जा वृहद व्यवसाय के साथ–साथ किसी भी देश की आर्थिक व सामाजिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका दर्शाती है।

भारत में छापा कला का इतिहास – भारत वर्ष में प्राचीनकाल से ही रंगाई और छपाई का कार्य होता आ रहा है। विविध प्राचीन भारतीय साहित्यों में छपे वस्त्रों के संदर्भ में 'अभिप्राय' शब्द का उल्लेख है जिसकी विद्वानों ने छपे वस्त्रों के रूप में पहचान की है। इस तथ्य से संबंधित साहित्य दिव्यावदान, ललित विस्तार, कुमार संभव, हर्षचरित्र, कादम्बरी आदि से मिलता है। बाण द्वारा उल्लेखित 'कुटिलक्रमारूपक्रियमावपल्लवपर' पद से विकसित छपाई कला का बोध होता है तथा वर्णित छपे वस्त्रों की भाँतो (डिजाईन) की झलक सारनाथ के धमेख स्तूप के शिलाघटित आवरण के अलंकरण में देखी जा सकती है। इसके साथ ही छापा में प्रयोग आने वाले ठप्पा के लिए वाण ने 'रूप' शब्द का प्रयोग किया। कुछ भारतीय प्राचीन संस्कृत साहित्य में 'फुट्टक', 'पुष्पवट', 'हंसलक्षणयुक्त', हंस मिथुन में छपे हुए चित्रित वस्त्रों का वर्णन मिलता है। चालुक्य शासक सोमेश्वर (1124–1138 ई.) ने 'मानसोल्लास' में सूती रेशमी व ऊन्नी कपड़ों पर अलग–अलग रंगों से बनाये गये लहरदार भाँतों (डिजाईन) आदि का विसतार से वर्णन किया है। सोमेश्वर द्वारा उल्लेखित 'चित्र कपर्डक' और 'चित्रपटीपट' आदि शब्द छापा या कलमकारी के कपड़े जैसे प्रतीत होते हैं।

कई विद्वानों के अनुसार ठप्पे की छपाई पद्धति चीन से मध्य एशिया एवं ईरान होते हुए मुसलमानों के साथ भारत आई थी, ऐसा मानते है। मध्य युग के शब्दकोशों में उल्लेखित 'उच्छो' (छपाई उद्योग) और 'छिम्पाय' (छीपा) शब्दों से यह प्रतीत होता है कि इस युग में छापा उद्योग अपनी सुविकसित अवस्था में पहुंच चुका था। वही भारत की महान कला का उदाहरण प्रस्तुत करने वाली अजन्ता (गुहा) में 5वीं से 8वीं शताब्दी के भित्तिचित्रों में नृत्यरत समूह, गायकों, दासों के परिधानों में छापा अलंकरण देख जा सकते है, वही नगरीय सभ्यता रही सिन्धु सभ्यता से तीसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के पुरातात्विक स्थल मोहनजोदड़ो से चांदी के बर्तन के चारों ओर लिपटा हुआ वस्त्र मिला जिस पर छापा द्वारा सज्जा की गई थी।

सत्रहवीं शताब्दी में भारती छींट (छपा हुआ कपड़ा) की प्रसिद्ध इंग्लैण्ड में इतनी अधिक हो गई थी कि बाहर से आने वाले रेशमी वस्त्र का व्यापार उससे बुरी तरह प्रभावित हो गया, जिसके कारण इंग्लैण्ड को छींट का आयात बन्द करना पड़ा।

राजस्थान में छापा कला एक परिचय – राजस्थान में जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर, बाड़मेर, भीलवाड़ा, कालाहेड़ा, जाहोना व बगरू में छपाई का कार्य होता आ रहा है। परंतु छापा कला का सर्वोत्कर्ष कार्य सांगानेर में मिलता है। वही अगर बात राजस्थान को केन्द्र में रखकर करे तो सबसे पहला छपाई का साक्ष्य चौदहवीं–पंद्रहवीं शताब्दी का है जो फोस्तात (मिश्र) से पाए गए नीले रंग के कपड़े और छपे वस्त्रों की सज्जा विधि से युक्त लगते हैं तथा इसकी छाप, राजस्थान व गुजराती भाँतों से साम्यता रखती है। सन् 1728

में महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा जयपुर राज्य की स्थापना की गई इनके समय में रंगाई–छपाई को विशेष सराहा गया व संरक्षण प्रदान किया गया।

जयपुर की छपी हुई मलमल और सूती छींट पूरे भारत में प्रसिद्ध रही है, जो जोधुपर में बड़ी मात्रा में निर्यात की जाती थी। जयपुर में कपड़ों के चार विभाग 'किकिराखाना, जारगरखाना, तोसाखाना एवं खजाना बेहला होते थे। जयपुर के पास सूती वस्त्र का दूसरा केन्द्र बगरू है। यहाँ पर दाबू छापा का कार्य अधिक मात्रा में होता है।

पश्चिमी राजस्थान का सीमावर्ती क्षेत्र जैसलमेर अपनी पुरानी नमूनों (भाँत) की उत्कृष्ट छपाई के लिए अपनी विशिष्टता बनाये हुए है। जैसलमेर के पोथीखाना एवं जैन भण्डार के ग्रंथों पर पुराने छपाई के नमूने कपड़ों के आवरण के रूप में देखे जा सकते हैं। इन कपड़ों को बस्तों के रूप में ग्रंथों के चारों ओर लपेट कर रखा जाता था। वहीं इनके अलंकरण (भाँत) बारहवीं शताब्दी के मिश्र के कब्र पर बनी हुई उत्कृष्ट शैली के बूटे के समान है। जैसलमेर के छीपों का इतिहास कोई पुराना नहीं है तथा सभी छीपे हिन्दू है, जो खत्री छिपा है। वही चित्तौड़ जिले के अन्तर्गत कपासन में मुख्य रूप से घाघरा या लहंगा की छपाई का कार्य होता है। उस छपाई को 'जानणा' कहा जाता है। छीपों के आकोला (चित्तौड़गढ़) में छपाई का कार्य वर्षों पूर्व से होता आ रहा है। आज से लगभग 100 वर्ष पूर्व इस गांव में सभी लोग छीपे थे। जिसमें हिन्दू वंशीय है तथा सूरसेन के वंशज है। ये नामदेव की पूजा करते हैं। वही भीलवाड़ा में मुख्य रूप से जाजम, पलंगपोश, चुनड़ी, रजाईयाँ एवं तकियों की खोल की छपाई का काम ठप्पे द्वारा किया जाता है। भीलवाड़ा, बलोतरा, पीपाड़, जोधपुर और उदयपुर के छापे छापाकार धर्मों के अनुयायी है। मारवाड़ में जोधपुर शहर के अतिरिक्त उसके संभाग के कई क्षेत्रों में ठप्पा की छपाई की जाती थी।

राजस्थान में जयपुर, सांगानेर, बगरू, बस्सली कालाडेरा, जाहोना, बाड़मेर, जैसलमेर और आकोला आदि स्थान पर छापा कार्य किया जाता है। उदयपुर में मुख्य रूप से पगड़ी, दुपट्टे, कमरबंद पर छपाई होती है, छीपों का अकोला चित्तौड़गढ़ की छपाई नाणना के नाम से जानी जाती है। आम तौर पर भाँत को यहाँ पर विशेष रूप में गंगोदिया, लौहार महिलाएँ बनाती है। भीलवाड़ा का मुख्य उत्पादन पलंगपोश और जाजम है, बगरू में दाबू, अजरक आदि की छपाई की जाती है।

छापा अलंकरण मे कलात्मक पक्ष – राजस्थानी वस्त्र परिसज्जा में छापा कला की परम्परागत रूप से कई सारी विधियों का प्रयोग किया जाता है, प्रयोग के आधार पर इनका नामकरण भी हुआ। कई विधियाँ इतनी प्रचलित हुई कि वहाँ के भूभाग के आधार पर इनकी पहचान विश्वभर में होने लगी। जैसे बगरू में दाबू प्रिंट को बगरू छापा कला के नाम से जाना जाता है वही सांगानेर में होने वाली छापा को सांगानेर छापाकला के नाम से जाना जाता है। आकोला में होने वाली छापा कला को अकलो गाँव में होने के कारण अकोला छापा कला के नाम से जाना जाता है।

ये सारी विधियाँ अपनी मौलिक भिन्नता से छापा कला परिधान निर्माण में कलात्मक रंग भर देते है। इन विधियों द्वारा निर्मित परिधान इतने सुन्दर है कि वर्षों से इनका जादू विश्वभर में प्रचलित रहा है। आज के युग में परिधान मनुष्य की पहचान बन चुका है, परिस्थिति के अनुसार मनुष्य परिधानों का चुनाव करता है, जो कि सामाजिक, मान, प्रतिष्ठा का भी द्योतक है, परिधानों को आकर्षक रूप देने हेतु कलात्मक सज्जा आवश्यक हो जाती है। विविध वस्त्रों की पहचान का आधार उनकी कलात्मक सज्जा से होता है तथा हम आसानी से परिधानों में भेद भी कर लेते है। परिधानों पर कलात्मक सज्जा होने से उनकी कीमत भी बढ़ जाती है। छापा परिधानों में सदियों से सुन्दरता लाने के लिए विविध प्रकार के भाँतों का प्रयोग तथा निर्माणन शैली अलग–अलग विधियों द्वारा सम्पन्न की जाती है तथा विविध रंगों द्वारा लावण्य व स्वरूप प्रदान कर वस्त्र सज्जा का कार्य पूर्ण होता है। सम्पूर्ण राजस्थान की भाँतों (डिजाईन) को हम भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर तीन भागों में बांट सकते हैं –

(i) पश्चिम राजस्थान में प्रचलित नमूनों के आधार पर छापा विधि

अजरक (बाड़मेर) – अजरक के इतिहास का पता सिन्धु घाटी की प्राचीन सभ्यताओं के समय से लगाया जा सकता है, लगभग 2500ई.पू से 1500ई.पू तक। मोहनजोदड़ो से प्राप्त पुजारी की प्रतिमा में शॉल के अलंकरण में मिलने वाला त्रिफूलिया नमूना अजरख छापा माना जाता है। ऐसा ही अलंकरण मेसोपोटामिया और तूतनखामेन के शाही सोफे से प्राप्त हुआ जिसकी साम्यता अजरख छापा कला के निकटवर्ती है। यह अलंकरण सूर्य, जल और पृथ्वी के देवताओं की एकता का प्रतीक माना जाता है। अजरख छापा कार्य का ऐतिहासिक सम्बन्ध सिन्ध (पाकिस्तान), कच्छ (गुजरात) तथा (बाड़मेर) राजस्थान से रहा है। जहाँ कच्छ के खत्री समुदाय के मुसलमान अजरख की छपाई व रंगाई का कार्य करते हैं, वही मालधारी समुदाय अजरक छापा वाले परिधान के प्रयोग में लोकप्रिय है, भारत पाकिस्तान के विभाजन के बाद इस जाति के कुछ लोग भारत में तथा कुछ पाकिस्तान में रहने लगे। अत: इस प्रकार इसके प्रचार–प्रसार को अधिक भू–भाग पर फैलने का मौका मिला।

पश्चिम राजस्थान में प्रसिद्ध अजरक छापा कला जो कि बाड़मेर का प्रसिद्ध छापा है, तथा एक और केन्द्र बालोतरा है जो कि जोधपुर और बाड़मेर के मध्य में स्थित है। यहाँ पर घाघेर में प्रयुक्त कटार बूटी को प्रमुख रूप से वस्त्र पर छापा जाता है तथा अन्य स्थानों से अलग बाड़मेर में विशेष प्रकार की छपाई होती है जो गहरे रंग से की जाती है, जिसे अजरक कहते हैं। यह छाप भी सांगानेर छाप की भांति दोनों तरफ से की जाती है। पगड़ी और चादर पर गहरे रंग से छपाई की जाती है, जो कि सूर्य की तेज किरणों से बचाती है। निश्चित ही अजरक अपनी ज्यामितिय अलकरणों और नीले रंग की रंगाई द्वारा अद्भुत छापा का प्रभाव उत्पन्न करता है। वस्त्रों के रंग एवं अलंकरण की दृष्टि से रेगिस्तानी इलाका शेष प्रदेश से तनिक भिन्न है। यहाँ गहरे चमकीले रंगो और बड़े–बड़े बूटे देखते ही बनते हैं। इसी कारण रेगिस्तान का नीरस वातावरण खिल उठता है।

असली अजरक मर्दों का ही पहनावा है, परंतु वर्तमान में महिलाओं की पोशाक बनाने में भी प्रयोग में लाया जा रहा है तथा मालाधारी मुसलमान की अलग–अलग जाति जैसे– गलीर, रेतो, मेनिया, नारीवली, सैडो व दामबुरो की महिलाओं के लिए छपाई व बांधनी का काम करते हैं। पहनावें की ये परम्पराएँ सामुदायिक पहचान व रिश्ते को मजबूत करते हैं। छपाई पेस्ट के प्रथम चरण में चूना और गम अरेविक का प्रयोग की प्रधानता रहती है तथा प्राकृतिक रंग का प्रयोग किया जाता है तथा दूसरे चरण की छपाई में इमली के बीज का पेस्ट प्रयोग में लाया जाता है तथा तीसरे चरण में गम अरेविक, मिट्टी, फिटकरी वा घोल प्रयोग होता है। इस प्रकार क्रमिक छपाई पद्धति द्वारा अलंकरण वस्त्र पर छापा जाता है। यहाँ की प्रसिद्ध भाँते (डिजाईन) खरक, चौकड़ा, गुडली, छकदमड़ी, मलेर, कंगरा आदि है।

(ii) पूर्वी राजस्थान में प्रचलित भाँतों के आधार पर छापा विधि

(1) बगरू का दाबू छापा – बगरू जयपुर से अजमेर जाने वाले राजमार्ग पर स्थित एक कस्बा है, जहाँ सूती कपड़ों पर हाथ से छपाई की एक लंबी परम्परा रही है। राजस्थान का एक छोटा सा गाँव बगरू जहाँ पर 'छिपा' (छपाई कार्य करने वाली जाति) राजस्थान के सवाई माधोपुर, अलवर, जुंझूनू, और सीकर जिलों से यहाँ इकट्ठे हुए है, और करीब 300 साल पहले बगरू में बस गए और इसे अपना घर बना लिया। बगरू शब्द 'बगोरा' से लिया गया है जो एक झील में एक द्वीप का नाम है जहाँ शहर मूल रूप से बनाया गया था जो कि अपने ताड़ के पंखे के लिए प्रसिद्ध रहा है और यहाँ का छींट छापा अलंकरण काफी प्रसिद्ध रहा। बगरू छापा अलंकरण युक्त वस्त्रों के लिए नागोर के बंजारे और किशनगढ़ के जाटो, गुर्जर, मीणा, माली और राजपूती जाति में बहुत ही पसंद किया गया तथा विदेशो में भी इस छापा कला को विशेष महत्व मिला। बगरू छापा में प्रमुख रूप से भूरा, हल्का पीला, लाल एवं काले फड़दे को विशेष रूप से उपयोग में लिया जाता है। कुछ कपड़ों पर रेख की छपाई और डाटाई के बाद छपे हुए स्थानों को दाबू से ढक दिया जाता है। यह एक प्रकार का गाढ़ाघोल होता है जो चूना, मिट्टी गोद तथा गेहूं के घुन (बेधान) को एक साथ अच्छी तरह मिलाकर तैयार किया जाता है। इस घोल को ठप्पों से छापकर भ्रातों को ढक दिया जाता है। फिर कपड़े पर जमीन का रंग चढ़ा दिया जाता है। रंगने के बाद कपड़े को साफा पानी में धोकर सुखाया जाता है। बाद में फिटकरी के पानी में डुबोया जाता है। इससे रंग में चमक आ जाती है तथा धुलाई हेतु संजारी नदी का जल प्रयोग में लाया जाता है, जिसका लाभ परिधान अलंकरण में होता है नदी के जल में विद्यमान तत्व छापा परिधान में सहायक अनिवार्य तत्व की तरह काम करते हैं परंतु वर्तमान में इसका जल स्तर काफी कम हो गया है, परंतु फिर भी यहाँ छापा कार्य अभी तक जारी है। यहाँ पर प्रचलित बूटो में बोसली का फूल, पंखी बूटी, हरा धणियां, पनड़ी, चौबूंदी, चरकी, दाखा आदि प्रचलित है। दाबू की छपाई को राता डटाई भी कहा जाता है।

(2) सांगानेर छापा कला – जयपुर के समीप स्थिति सांगानेर का नामकरण 16वीं शताब्दी में कच्छवाहा राजकुमार सांगाजी के नाम पर हुआ। 18वीं शताब्दी के नक्शों में यह समृद्ध नगर प्रतीत होता है तथा यहाँ पर छपाई उद्योग तथा कागज बनाने के उद्योग से पता चलता है, कि इस उद्योग का उस समय निरंतर विकास होता रहा तथा यह छापा कला विधि इतनी प्रसिद्ध हुई कि 1803 में सर जार्ज वाट ने इंडियन आर्ट ऐट देहली में लिखा कि 'कला एवं तकनीक दृष्टि में जयपुर राज्य का सांगानेर कस्बा भारतीय छपाई उद्योग का प्रमुख केन्द्र है।' यद्यपि 1727 में महाराज जयसिंह ने अपनी राजधानी अंबर (आमेर) से स्थानान्तरित करके जयपुर कर दी, फिर भी उन्होंने इस छापाकला के महत्व को जाना व व्यापारिक महत्व को समझते हुए इस छापा विधि को संरक्षण दिया। कुछ विशेष अवसरों पर राजपरिवार के वस्त्र अलंकरण सज्जा हेतु सांगानेर छपने के लिए दिये जाते थे।

17वीं शताब्दी से पहले सांगानेर का मुद्रण केन्द्र के रूप में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। संभवत: 17वीं शताब्दी के अंत में इस कला रूप का विकास यहाँ हुआ था, सम्राट औरंगजेब के साथ युद्ध और बार-बार होने वाले आक्रमणों के कारण मराठों में से पड़ोसी राज्य गुजरात से कई शिल्पकार आए और राजस्थान में बस गए। 19वीं सदी के अंत तक सांगानेर में यह उद्योग पूर्ण रूप से विकसित हो चुका था।

सांगानेर छापा परिधानों में ज्यादातर भाँतों में फूल, पत्तियों एवं पशु-पक्षी एवं घुमावदार डाली का सुन्दर आयोजन रहता है। फूलों की सुन्दर टहनी को शंकु आकार में कभी गुच्छों के रूप में कभी फूलदान के साथ बनाया जाता है। सर्वाधिक प्रसिद्ध दाखा बेल है तथा प्राकृतिक रंगों द्वारा छापा कार्य ब्लॉक प्रिंट (ठप्पा) द्वारा किया जाता है।

(iii) दक्षिण-पश्चिम राजस्थान में प्रयोजित अलंकरण के आधार पर छापा विधि

अकोला छापा विधि – दक्षिण-पश्चिम में बगरू की तरह ही छपाई के लिए प्रसिद्ध एक गांव है, अकोला, जो चित्तौड़ जिले में बेड़च नदी के तट पर बसा हुआ है। अकोला में होने वाली छापा कला को आजम, जाजम व दाबू भी बोला जाता है। अकोला क्षेत्र हैड ब्लॉक प्रिंटिंग के लिए जाना जाता है, यहाँ पर दो विशिष्ट प्रकार की मड रेसिस्ट (दाबू) छापा प्रचलित है इसमें एक को फेटिया तथा दूसरी नंगना बोला जाता है। इस छापा कला की सुन्दरता यहाँ पर प्रयोग होने वाले रंगों के कारण होती है जिसमें मुख्यत: लाल, काले, हरे रंग प्रधान रहते है। यह छापा कला लगभग 500 से 700 साल पुरानी है जो वर्तमान समय में भी जीवन्त अवस्था में है तथा आमूल-चूल, परिवर्तन के साथ आज भी कई पुराने भाँतों का प्रयोग उसी रूप में हो रहा है। पहले पूर्ण रूप से प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था परंतु अब रासायनिक रंगों का प्रचलन बढ़ गया है। जहाँ बगरू में छापा परिधान में वेधान का प्रयोग होता है किन्तु आकोला में बेधान के स्थान पर गोद का पानी का प्रयोग मिट्टी और चुने के पेस्ट में किया जाता है। इसमें ज्वार मांखी भाँत प्रचलित थी। गुजरों में नान्दणा की कई भाँते (किस्म) चलती थी। चित्तौड़ में बडो बूटो, छिपकली (चपकली), मावली नाथद्वारा तरफ बूटो, गंगा-जमुना या मोरड़ी प्रयोग में लाए जाते है।

वर्तमान परिवेश में छापा कला की उपयोगिता एवं महत्व – वर्तमान में छापा परिधानों का उपयोग केवल प्रचलित परिधान में ही नहीं बल्कि रोजमर्रा के दैनिक जीवन में उपयोग होने वाली वस्तु के निर्माण में भी होता है। उदाहरण के लिए अनोखी म्यूजियम में संरक्षित 'सिंघाड़ा बैग' जो कि वर्तमान में पुरूषोत्ताम छीपा द्वार बनाया गया, जिसमें हाथ के द्वारा बारीक काम किया गया है एवं हाथी का डिजाईन थैले के नीचे सिला है। जिस पर ठप्पा की छपाई, प्राकृतिक रंग, दाबू की छपाई की गई है। जो आज के समय में भी अन्य वस्त्र सज्जा से किसी भी प्रकार से कम नहीं है यह अपनी मौलिक सुन्दरता का अप्रतिरिम उदाहरण है। वही आज के आधुनिक समय में फैशन के तौर पर वस्त्रों का प्रदर्शन आयोजित फैशन सो व म्युजियमस (संग्रहालय) में किया जाता है, जिसका उदाहरण अनोखी म्युजियम जयपुर में स्पष्ट देखने को मिलता है ऐसा ही उदाहरण कैलिको म्युजियम (गुजरात) में भी मिलता है जहाँ पर छापा परिधानों से अलंकृत वस्त्रों का आधुनिक स्वरूप में संरक्षण किया गया है, वही कई बहुत प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा परम्परागत छापा परिधानों को बड़ी प्रदर्शनी में प्रयोजित किया जाता रहा है तथा बैग, बटुआ, चादर, रूमाल, मेजपोश, तकिया का गिलाफ, काँचली, दुपट्टे, पर्दे आदि में भी छापा परिधानों का काफी प्रचलन है। राजस्थानी क्राफ्ट में छापा परिधान का कलात्मक पक्ष निश्चित ही सुन्दरता व सौंदर्य का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते है।

मलीर एवं अजरक विधि से लाल और नीले रंग में छपे रंगीन साफे चद्दरे इस दृष्टि से तो अतिमोहक होती है। यहाँ के आंचलिक लोगों का मानना है कि रंग तो गहरे ही होने चाहिए, ये ठण्डे होते है और विशेषकर धूप से रक्षा करते हैं। पश्चिमी राजस्थान में पाली-मारवाड़ की रंगाई-छपाई का एक

बहुत बड़ा केन्द्र रहा है। उसके दो प्रमुख कारण है- एक तो यह कि पाली के पास से लूनी नदी बहती है, जिसका पानी खारा होने के कारण रंगाई के लिए विशेष उपयोगी रहा है। अब यहाँ रंगाई-छपाई न के बराबर है कारण व्यापारिक मार्ग का बन्द होना। परंतु वर्तमान में फिर से छापा परिधानों का व्यापार भारत से बाहर हो रहा है तथा देश के बहुत से प्रसिद्ध ब्रांडों द्वारा भारतीय बाजार में छापा परिधानों को कुछ मूल-चूल परिवर्तन करके परिधान उपलब्ध कराये जा रहे है, जिसमें अहम भूमिका में अनोखी, फेव इण्डिया आदि है। वही छापा परिधान की महत्ता का अनुमान लगाना बहुत सरल हो जाता है, जब अमेरिकी मासिक फैशन पत्रिका वोग में भी राजस्थानी नमूनों से अलंकृत छापा परिधान को जगह दी जाती है ऐसे अनेकों उदाहरण है जो यह सिद्ध करते है कि वर्तमान समय में भी पारम्परिक छापा परिधानों की महत्ताा बनी रहेगी क्योंकि बदलते परिवेश और आने वाले समय में प्रदूषण के कारण गर्मी और अधिक बढ़ेगी तथा ऐसे में शीतल आकृषक और अलंकृत छापा परिधानों की आवश्यकता बढ़ेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. वृन्दा सिंह : वस्त्र विज्ञान एवं परिधान, पृ.264-266
2. डॉ. आशा भगत : राजस्थान, गुजरात एवं मध्यप्रदेश की छपाई का सर्वेक्षण, पृ.2, 4, 8, 15
3. गुलाब कोठारी : राजस्थान की रंगाई छपाई, पृ.48, 49, 50
4. अजरक पेटर्नस बोडर्स : अनोखी म्युजियम ऑफ हेण्ड प्रिंटिग, पृ.11, 15, 64
5. सुखसिंह भाटी : राजस्थान के परम्परागत वस्त्र, पृ.26-31
6. डॉ. गोपीनाथ भाटी : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.35-36, 100-102
7. डॉ. मीनाक्षी गुप्ता : परम्परागत भरतीय वस्त्र, पृ.8
8. महेश चन्द्र जोशी : युग-युगीन भारतीय कला, पृ.52
9. डॉ. राजकुमार : शिल्पियों का गौरवशाली इतिहास, पृ.29, 34, 37, 47
10. कमलेश माथुर : क्राफ्ट एण्ड क्राफ्ट्समेन, पृ.54-57

****